

भोपाल गैस कांड

सरकार ने न कुछ किया, न कहेगी

भोपाल गैस कांड के 25 वर्ष बाद न्यायालय का फैसला आने पर इस मामले ने फिर जोर पकड़ लिया है। इस मामले पर रोज ही अखबारों में लेख और टिप्पणियां प्रकाशित हो रही हैं। इस मामले में न्यायालय का फैसला इतनी देर से आने के बाद स्वयं कानून मंत्री वीरप्पा मोइली को टिप्पणी करनी पड़ी। उन्होंने कहा कि देर से आया फैसला न्याय को कब्रगाह में डालने जैसा है।

इस संबंध में दूसरा जो मामला विशेष रूप से चर्चित हुआ है, वह यह है कि यूनियन कार्बाइड के मालिक वारेन एंडरसन को देश से सुरक्षित निकल भागने का मौका किसने दिया।

इस मामले में भोपाल के तत्कालीन जिलाधिकारी ने कहा है कि उन्हें यह आदेश मिला कि एंडरसन को हवाई अड्डे पर सुरक्षित पहुंचाना है और उन्होंने एस्पों को साथ लेकर एंडरसन को हवाई अड्डे पर पहुंचाया और तब तक वहां मौजूद रहे जब तक एंडरसन को ले कर जहाज उड़ न गया। उड़ने के पहले एंडरसन ने उन्हें थैंक यू भी कहा।

यहां सवाल पैदा होता है कि भोपाल के तत्कालीन जिलाधीश को एंडरसन को सुरक्षित हवाई जहाज तक छोड़ने का आदेश किसने दिया। क्या मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह ने? इस संबंध में भोपाल के तत्कालीन जिलाधीश

ही सच्चाई बता सकते हैं, पर उन्होंने यह बताया ही नहीं। अब सिर्फ इस बात का अनुमान लगाया जा रहा है कि यह आदेश अर्जुन सिंह ने स्वयं दिया था या उन्हें केंद्र ने ऐसा करने का आदेश दिया था। इस सवाल पर कांग्रेस की स्थिति अजीब हो गई है और वह अपने आप को भारी सांसत में फंसा महसूस कर रही है। चूंकि कांग्रेस का मतलब गांधी-नेहरू परिवार ही रहा है, इसलिये यह प्रचारित किया जा रहा है कि राजीव गांधी को एंडरसन के देश छोड़ कर जाने की खबर नहीं थी। उन दिनों वे चुनाव प्रचार के सिलसिले में दौरे पर थे और उन्हें यह सूचना बाद में ही मिली। इसलिये इस मामले में असली दोषी अर्जुन सिंह को ही ठहराया जा रहा है। पर अर्जुन सिंह इस मामले में मुंह नहीं खोल रहे हैं और उन्होंने गंभीर चुप्पी साध रखी है। कांग्रेस का आला कमान अर्जुन सिंह से इस मामले में पूछताछ भी नहीं कर रहा।

यह भी कहा जा रहा है एंडरसन भोपाल गैस पीड़ितों के प्रति 'सहानुभूति' जताने इसी शर्त पर आया था कि उसे भारत से सुरक्षित निकल जाने का रास्ता दिया जायेगा।

सवाल यह भी है कि उसने अपनी यह शर्त किसके सामने रखी थी और किसने उसकी इस शर्त को माना था। ये ऐसे सवाल हैं जिनका उत्तर मिलना जरूरी है ताकि भोपाल गैस कांड के मुख्य अभियुक्त एंडरसन के देश से भाग निकलने की

जिम्मेदारी तय की जाये। यह उल्लेखनीय है कि एंडरसन के भोपाल आते ही उसे पुलिस हिरासत में ले लिया गया था और गेस्ट हाऊस में उसे ठहरा कर उसकी अच्छी-खासी आव-भगत की गई थी। फिर उसे जमानत कैसे मिली और किसने दी?

इन सवालों का उत्तर देना कांग्रेस नहीं चाहती, क्योंकि इनका सही जवाब मिलने पर उसकी दुर्गति हो जायेगी। कांग्रेस की कार्य संस्कृति से परिचित कोई भी व्यक्ति इस बात को आसानी से समझ सकता है कि कांग्रेसी मुख्यमंत्री अपने स्तर पर कोई फैसला नहीं लिया करते। किसी भी महत्वपूर्ण मामले में निर्णय लेने के पहले उन्हें आला कमान की स्वीकृति अवश्य हासिल करनी पड़ती है। इसलिये यह संभव ही नहीं लगता कि अर्जुन सिंह ने अपने स्तर पर एंडरसन को देश से भगाने का फैसला लिया होगा और इसके बारे में कांग्रेस हाई कमान को कुछ पता नहीं होगा। इसलिए इस संबंध में किसी भी तरह के भ्रम में रहने की जरूरत नहीं है। एंडरसन को देश से भगाने में तत्कालीन केंद्र सरकार की प्रमुख भूमिका रही है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

बहरहाल, अब इस घटना के 25 वर्ष बीत जाने के बाद मंत्रियों का समूह यह कह रहा है कि एंडरसन के प्रत्यर्पण के लिए प्रयास किया जायेगा। क्या अब एंडरसन का प्रत्यर्पण संभव है? क्या दुनिया की सबसे बड़ी औद्योगिक दुर्घटना (जिसे

जनसंहार कहना उचित होगा) के लिये जिम्मेवार यूनियन कार्बाइड के मुखिया को सजा दी जा सकती है? अगर उसे सजा देने की मंशा होती तो सरकार बड़ी आसानी से उसे देश से भागने का मौका ही नहीं देती। आज हर व्यक्ति यह समझ सकता है कि एंडरसन का प्रत्यर्पण हर्षिज संभव नहीं होगा।

जहां तक गैस पीड़ितों को मुआवजा देने की बात है तो इसमें भी एंडरसन को सस्ते में छोड़ दिया गया। अब मंत्रियों के समूह ने गैस पीड़ितों के लिये 1265.65 करोड़ का पैकेज मंजूर किया है जिससे मात्र 45 हजार पीड़ितों के लाभान्वित होने की संभावना है जबकि गैस पीड़ितों की संख्या लाखों में है। अब तक तो न जाने कितने गैस पीड़ित मुआवजे की उम्मीद लिये इस दुनिया से कूच कर गये। साथ ही, मुआवजा देने में भी इतनी धांधलेबाजी हुई है कि जो मुआवजे के असली हकदार थे, उन्हें तो मुआवजा मिला नहीं, दूसरे गैस पीड़ित होने का सर्टिफिकेट लेकर मुआवजा हड़प गये।

सवाल यह भी है कि गैस पीड़ितों की दूसरी और तीसरी पीढ़ी जो गैस के असर से विकलांग पैदा हो रही है, उन्हें मुआवजा कौन देगा? अब सवाल है यूनियन कार्बाइड के कारखाने में पड़े जहरीले कचरे के निपटान का। इस मामले में भी यूनियन कार्बाइड ने अपना पल्ला झाड़ लिया है। यूनियन कार्बाइड कंपनी को अमेरिका की

ही डॉव कंपनी ने खरीद लिया है और वह कचरे के निपटान में आने वाले खर्च को वहन करने के लिये तैयार नहीं है। यूनियन कार्बाइड कंपनी ने अपना नाम बदल लिया है और तकनीकी रूप से अब वह अस्तित्व में नहीं है। कायदे से डॉव केमिकल्स को यूनियन कार्बाइड के कारखाने में पड़े जहरीले कचरे का निपटान करना चाहिये, पर उसने ऐसा करने से साफ इनकार कर दिया है और रतन टाटा जैसे उद्योगपति उसकी वकालत करने के लिये सामने आ रहे हैं। टाटा का कहना है कि सरकार अपने खर्च पर कचरे का निपटान करे अथवा इस देश के उद्योगपति मिल-जुल कर अपने खर्च पर ऐसा करें।

यह एक विचित्र स्थिति है जो इसी देश में संभव हो सकती है। वर्तमान सरकार अमेरिका की इस हद तक चाटुकार है कि वह वहां के उद्योगपतियों के खिलाफ कोई क्रदम नहीं उठा सकती।

हां, दिखावे के लिये कुछ रोना-धोना वह कर सकती है और गैस पीड़ितों के घावों पर मरहम लगाने के लिये यह झूठी बात कह सकती है कि भोपाल नरसंहार के लिये उत्तरदायी वारेन एंडरसन के प्रत्यर्पण की वह कोशिश करेगी। पर जनता का जागरूक हिस्सा इस बात को भली-भांति समझ रहा है कि अगर एंडरसन को सजा देने की नीयत सरकार की होती तो उसे देश से भागने ही क्यों दिया जाता?

- मनोज

सांस्कृतिक आतंकवाद

सांस्कृतिक निरंकुशता बाजार के एकमात्र सर्वव्यापी प्रवचन के बार-बार परायण, उपभोक्तावाद की एकरूप संस्कृतिक और भ्रष्ट चुनाव प्रणाली के जरिए जड़ जमाती है। मीडिया की नई निरंकुशता श्रेणीबद्ध राजसत्ता और आर्थिक संस्थाओं के चतुर्दिक डटी हुई है, जो अंतरराष्ट्रीय बैंकों के हैड क्वार्टर से लेकर सुदूर गांवों तक पहुंचती है। तीसरी दुनिया में अमेरिकी संस्कृति के घुसपैठ की सफलता का रहस्य है-आर्थिक और सामरिक प्रभुत्व की व्यवस्था के कारण पैदा होने वाली विपत्ति से पलायन के लिए मायाजाल सृजन की इसकी क्षमता। नए सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का अनिवार्य अवयव है-व्यावसायिकता, कामुकता और रूढ़िवादिता का विलयन, जिनमें से प्रत्येक को निजी जरूरतों को व्यक्तिगत आत्मबोध की आदर्शकृत अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। दिन प्रतिदिन के जानलेवा कामों में लगे, जीने के लिए रोज-रोज संघर्ष करते, गंदगी और अधोगति के बीच जी रहे तीसरी दुनिया के लोगों के लिए उत्तरी अमेरिकी मीडिया का मायालोक धर्मप्रचारक की तरह, "किसी बेहतर चीज" का चित्रण करता है, भविष्य में बेहतर जीवन की आशा दिलाता है, या कम से कम दूसरों को मजा लेते देखना भी खुद को वैकल्पिक आनन्द प्रदान करता है। यदि हम क्रांतिकारी परिस्थितियों के परिपक्व होते जाने के बावजूद क्रांतिकारी रूपांतरण के न होने का कारण समझना चाहते हैं, तो हमें राज्य की राजनीतिक हिंसा के गहरे मनोवैज्ञानिक प्रभाव, आतंकवाद और साम्राज्यवादी देशों द्वारा प्रचारित व उत्पीड़न जनता द्वारा अपनाए

गए सांस्कृतिक वैचारिक मूल्यों के गहरे प्रभाव पर अवश्य पुनर्विचार करना होगा। 70 के दशक और 80 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों की राज्य हिंसा ने दीर्घकालिक व व्यापक मनोवैज्ञानिक क्षति पहुंचाई, जैसे-रेडिकल पहलकदमी से भय, सामूहिकता के प्रति अविश्वास, घृणित शासकों के प्रति एक तरह की लाचारी के भाव इत्यादि। आतंक ने "जन-जन" को अन्तर्मुखी बना दिया है, उन्हें अपनी निजी दुनिया की ओर मोड़ दिया है।

तदन्तर, "आर्थिक आतंकवाद" के रूप-नव-उदार नीतियों का परिणाम हैं फैक्ट्रियों की तालाबंदी, अस्थायी कार्यों में वृद्धि, कम मजदूरी वाले निजी उद्योगों में कई गुने की वृद्धि और मजदूरों को दिए गए कानूनी संरक्षता की समाप्ति। इन नीतियों ने श्रमिक वर्ग और जन-समुदायों को और अधिक हिस्सों में बांट दिया है। विघटन, अविश्वास और निजीकरण के इस परिप्रेक्ष्य में साम्राज्यवाद के सांस्कृतिक संदेश को उर्वर जमीन मिली, जिसने दुर्बल लोगों की संवेदनशीलता का दोहन करते हुए व्यक्तिगत अलगाव, आत्मकेन्द्रित अंधी दौड़ और अत्यल्प संसाधनों के लिए आपस में गलाकाट प्रतियोगिता को प्रोत्साहित किया और गहरा बनाया।

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और इसके द्वारा प्रोत्साहित मूल्यों ने शोषित जनों को अपनी लगातार गिरती स्थिति के खिलाफ सामूहिक प्रतिवाद से रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तीसरी दुनिया में फैलाए गए प्रतीकों, छवियों और विचारों ने वर्गीय शोषण और बढ़ते कंगालीकरण के खिलाफ सामूहिक कार्यवाही के लिए वर्ग-चेतना के आधारों के निर्माण के मार्ग में बहुत बड़ा

अवरोध खड़ा किया है। साम्राज्यवाद की महान विजय केवल भौतिक मुनाफे तक ही सीमित नहीं है बल्कि प्रत्यक्ष रूप से जनसंचार माध्यमों के जरिए और अप्रत्यक्ष रूप में बौद्धिक व राजनीतिक वर्ग को गिरफ्त में लेकर (या उनके द्वारा आत्म समर्पण के द्वारा) उसने उत्पीड़ित जनता की चेतना के अन्तस्थल पर भी आधिपत्य जमा लिया है। जहां तक व्यापक क्रांतिकारी राजनीति के पुनर्जीवन की संभावना का प्रश्न है, केवल शोषण की परिस्थितियों के खिलाफ ही नहीं, बल्कि उस संस्कृति के खिलाफ भी खुला संघर्ष छेड़ना होगा, जो लोगों को पराधीनता का शिकार बनाती है।

सांस्कृतिक उपनिवेशवाद के दबावों के बरक्स यह बहुत बड़ी हकीकत है-पश्चिमी बहुराष्ट्रीय बैंकों द्वारा थोपी गई कंगाली व शोषण का तथा अमेरिका से खरीदे गए हथियारों के बल पर पुलिस फौज द्वारा दमन का निजी अनुभव-रोज-रोज की हकीकत, जिसे पलायनवादी मीडिया बदल नहीं सकती। तीसरी दुनिया के जनता के दिमाग में लगातार एक संघर्ष चल रहा है-व्यक्तिगत पलायन के (पश्चिमी मीडिया द्वारा पैदा किए गए) पिशाच और सहजानुभूत ज्ञान के बीच संघर्ष कि सामूहिक कार्यवाही और दायित्व ही एकमात्र व्यवहारिक प्रत्युत्तर हैं। सामाजिक लामबंदी के आरोह के समय एकजुटता के गुण की मिसालें कायम की जाती हैं। पराजय और ह्रास के समय व्यक्तिगत लोभ के पिशाच को छूट मिल जाती है। लोगों को दिग्भ्रमित करने और धोखा देने की सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की एक चरम सीमा होती है जिसके आगे सार्वजनिक बहिष्कार का प्रारम्भ होता है।

टीवी में दिखने वाले "पकवानों से सजे टेबुल" खाली रसोईघर के अनुभव के साथ विरोधाभास दर्शाते हैं। मीडिया के पात्रों की कामुक शरारतें घर के रोते-धिंधियाते भूखे बच्चों से टकराती हैं। राह चलते कोई परिचित मिल जाए, तो उसे कोकाकोला पिलाना शराब की दावत देने के समान लगता है। धनी बनाने के वादे बार-बार प्रवर्चित लोगों के लिए अपमानजनक बन जाते हैं। दीर्घकालिक कंगाली और चतुर्दिक पतन जन-संचार माध्यमों के मायालोक की तड़क-भड़क और अपील को धूल-धूसरित कर देते हैं।

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के झूठे वादे किसी और ही देश-काल की चीज लगने लगते हैं और कड़वे मजाक का विषय बन जाते हैं। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की अपीलें सामूहिकता के मजबूत बंधनों द्वारा सीमाबद्ध कर दी जाती हैं, जिनकी अपनी स्थानीय व क्षेत्रीय मूल्य-मान्यताएं होती हैं। जहां वर्ग, नस्ल, लिंग और नृजातीय (एथनिक) बंधन टिकाऊ होते हैं और सामूहिक कार्यवाही की प्रक्रिया तीव्र होती है, वहीं जन संचार माध्यमों का प्रभाव सीमित या बहिष्कृत कर दिया जाता है।

जब तक पूर्ववर्ती संस्कृतियां और प्रथाएं जिन्दा बची रहती हैं, वे एक "घनिष्ठ दायरा" बनती हैं, जो उन सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रथाओं को एकीकृत करता है, जो अभ्यान्तरिक और आधारभूत होती हैं, न कि उधर्वमुखी और बहिर्मुखी। ऐसे अनेक समुदाय हैं जिनमें बाजार के प्रभुत्व से जुड़े "आधुनिकतावादी" उन्नतिपरस्त व्यक्तिगत प्रवचनों के प्रति स्पष्ट नकार मौजूद होता है। चिरस्थायी एकजुटता और साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलनों की ऐतिहासिक जड़ें,

उन समुदायों में देखने योग्य होती है, जो आपस में नृजातीय और पेशागत बंधनों से घनिष्ठतापूर्वक जुड़े होते हैं, जैसे-खान मजदूरों, मछुआरों या वन मजदूरों की बस्ती, शहरी क्षेत्रों को औद्योगिक केन्द्र इत्यादि। जहां कहीं समान पेशे, समुदाय या वर्ग के लोग सामूहिक सांस्कृतिक परम्पराओं और प्रथाओं की ओर अग्रसर होते हैं, वहीं सांस्कृतिक साम्राज्यवाद पीछे हटने लगता है।

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की सफलता केवल छलनियोजन के तकनीकी कौशल पर ही नहीं, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि राजसत्ता जन साधारण को कठोर बना देने, उन्हें टुकड़े-टुकड़े में बांट देने और समतामूलक समाज में उनकी सामूहिक आशा और विश्वास का अपहरण कर लेने में कितना समर्थ हैं। सांस्कृतिक मुक्ति के लिए व्यक्तियों और वर्गों को "अधिकार प्रदान करना" ही पर्याप्त नहीं, बल्कि यह उस सामाजिक-राजनीतिक शक्ति के विकास पर निर्भर करता है, जो सांस्कृतिक पराजय का मार्ग प्रशस्त करने वाले राज्य आतंक का मुकाबला करने में समर्थ हों। सांस्कृतिक स्वायत्तता सामाजिक शक्ति पर निर्भर करती है और सामाजिक शक्ति को शासक वर्ग अपनी आर्थिक-राजनीतिक शक्ति के लिए खतरा समझता है। जिस तरह सांस्कृतिक संघर्ष स्वायत्तता, सामूहिकता और एक जुटता के मूल्यों द्वारा सुदृढ़ होता है, जो सामाजिक परिवर्तन की चेतना जागृत करने के लिए अनिवार्य है, उसी तरह वर्गीय व राष्ट्रीय पहचान के सांस्कृतिक आधारों को मजबूत बनाने के लिए राजनीतिक व सैन्य शक्ति का होना जरूरी है।

- प्रतिनिधि